Chapter-5

पंचम अध्याय :

विविध सांस्कृतिक परिदृश्य एवं कथ्य विस्तार

पंचम अध्याय :
विविध सांस्कृतिक परिदृश्य एवं कथ्य विस्तार

सांस्कृतिक परिवेश :

भारतीय इतिहास में संस्कृति का विशेष महत्व है, क्योंकि इस विशाल राष्ट्र की एकता कि सूत्र राजनीतिक प्रभुत्व या दबाव के अधिक सांस्कृतिक स्तर पर नियोजित हैं और इस संस्कृति का प्रवाह हमारी काव्य परम्परा में सतत वर्तमान है। मार्क्सवादी समीक्षक डॉ. रामविलास शर्मा लिखते है - यहाँ राष्ट्रीयता मुख्यतः संस्कृति और इतिहास की देन है। इस संस्कृति के निर्माण में इस देश के कवियों का सर्वोच्च स्थान है। इस देश की संस्कृति से रामायण और महाभारत को अलग कर दें तो भारतीय साहित्य की आन्तरिक एकता टूट जायेगी।[1] डॉ. शर्मा ने भारत जैसे बहु जातीय राष्ट्र के सामाजिक विकास में कवियों की भूमिका को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है।

नवगीत में सांस्कृतिक चेतना की अनगिनत उर्मियँ प्रवाहमान हैं। यधपि नवगीतकारों की मान्यता है कि संस्कृति स्थूल रूप में जीवनोपयोगी है। वह किसी जाति-समूह की सोच, सुख के विकास व दृष्टिकोण को नियोजित करने और उसे धार देने की आन का कार्य करती है, वह भाषा की ही तरह मनुष्य द्वारा अर्जित चेतना अनुषंग है-सामाजिक यथार्थ की चुनौतियों को समझते हुए मनुष्य पर गहन आस्था रखनेवाले साहित्य धर्मो संस्कृति की महता से न केवल विज्ञ हैं, परंतु वे उसे काव्य का मूलाधार भी मानते हैं।[2] अपने राष्ट्र की सांस्कृति परम्परा पर गर्व करनेवाले मार्क्सवादी समीक्षक रैल्फ फॉक्स राष्ट्र संस्कृति को ज्ञान प्रयोग की

अनिवार्य शर्त मानते हैं - लेखक को इस योग्य होना चाहिए कि वह अपने राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत का उपयोग कर सके संस्कृति एक ऐसी चीज है जिसे हमें जीवन के अमल को गहरा बनाने के काम में लाना है।[3]

नवगीत के पक्ष में सांस्कृतिक रेखांकन को प्रायः अधिकांश नवगीतकारों ने किया है वस्तु के अनुरूप शब्दावली रचनेवालों में उमाकान्त मालवीय सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं जिन के नवगीत का समवेत स्वर तदनुरूप संस्कृति के मानदण्डों का सन्तृप्त मुखर लोक है-

दिन दिन अँगिया छोटी पड़ती
गदर ये तरूणाई
पोर-पोर चटखे मादकता
लहराये अँगड़ाई
दोनोंतट प्रियतम शान्तनु की फेर रही दो बहियाँ।
छूट गया मायका बर्फ का, बाबुल की अंगनइयाँ।
भूखा कहीं देवव्रत टेरे
दूध भरी है छाती
दौड़ पड़ा ममता की मारी
तजकर संग-संघाती,
गंगा नित्य रंजाती फिरती जैसे कपिला गइया।
सारा देश क्षुधातुर बेटा, वस्तल गंगा मइया।

भारतीय संस्कृति का एक प्रबल पक्ष उसकी सामाजिकता है और नवगीतकार शृंगार के उल्लकित क्षणों व प्रणय की अभिव्यक्ति करते हुए भी सामाजिकता से कटे नहीं हैं। सांस्कृतिक शब्दवाली की अनुकूल देवेन्द्र शर्मा इन्द्र, सोमठाकुर, शम्भुनाथसिंह, नईम, ओमप्रकाश, गुलाबसिंह, विष्णु विराट, माहेश्वर तिवारी, उमाशंकर तिवारी, अनूप अशेष, शीलेन्द्र सिंह, राम सेंगर, दिनेश सिंह तथा महेश अनध आदि की रचनाओं में सुनाई पड़ती है।

नवगीत में जहाँ तक सांस्कृतिक पश्दृिश्यों को उभारने का प्रशन है वहाँ मुख्यत नवगीत कवियों ने परम्परित उन सांस्कृतिक धरोहरों को बार-बार उकेरने का प्रयत्न किया है, जो या तो आंचलिक परिवेश में अंशत प्रचलित हैं अथवा जिनके भग्नावशेष नगरीय सभ्यता

में संक्षिप्त रूप से विद्यमान है किशन सरोज लिखते हैं-

धर गये मेंहदी रचे दो हाथ
जल में दीप
जन्म -जन्मों ताल सा हिलता रहा मन
बाँचते हम रह गये अन्तर्कथा
स्वर्णकिशा गीत-बधुओं की व्यथा
ले गया चुनकर कमल
कोई हटी युवराज
देर तक शैवाल सा हिलता रहा मन ।

या फिर नवगीत कवि श्यामसुन्दर दूबे की निम्न नवगीत पंक्तियाँ देखें -

रात चंदरमा
चिठिया बाँचे
लहर-लहर आखर जरतारी !
फागुन जोग लिखी !
हल्दीं बरन
चाँदनी हो गयी
पूरे सोलह साल,
अबकी बरस करेगं गौना
बस्ती भर का ख्याल,
मलै पराग
देह पर उबटन
जगर-मगर फैली उजिचारी
फागुन जोग लिखी

प्रेम तिवारी के नवगीतों में भी ऐसे दृश्य दिखाई देते हैं -

जागे-जागे
सपने भागे

आँचल भर बरसात
मैं होती हूँ
तुम होते हो
सारी-सारी रात
हल्दी के
सपने आते हैं
ननदी को दिन रैन
हमें पता हैं
सोलह में
मन होता है बेचैन
कोई अच्छा-सा घरदेखो
ले आओं बारात

ग्रामीण परिवेश :

ग्रामीण परिवेश में खेत खलियान, चूल्हा-चक्की, बाखट- बखार, बाड़ा चौपाल, ठाकुर जमींदार, पटवारी, पगदण्डी, टपरा, कुँआ, जगत, पोखरा, तलैया, बरगद, नीम, चबूतरा, पीपल, इमली, गाय, भैंस, घोड़ा, गधा, गुलाब, गुड़हल, चम्पा, जुही, केतकी, बंसवाही, बगीचा, बाग झूला, उज्ज़र-बजार, उपजाऊ, ईख, धान आदि ऐसे अनगिनत शब्द है जो ग्रामीण परिवेश को गीतांकित करते हैं। इस सन्दर्भ में कुछ नवगीत खण्ड दृष्टव्य हैं-

माँ की बात छेड़ दी मन ने
सुधि आयी तब गाँव की,
बातें खूब हुआ करती थी,
जलती आग अलाव की
कहाँ गया घूरे का महुआ
पीपल का वह देवस्थान ?
वह बरगद छतनार कहाँ हैं
छाया जिस की सुखद महान

कुआं –ताल अब भी है लेकिन
पनघट सूना सूना है,
कहाँ गये वे झाड़ी जंगल
चरवाहों की बंशी तान ?
लहर ढूंढती
नदी किनारे आहट
राधा पाँव की ।

* * * * *

ताल–तलैया लिये जीवनी गंगा
धान सा पका किसान
गेहूँ–सा कटा किसान !
दो खेयों में खपता उड़ता
जैसे खरपतवार
पूरी बारिश धूप ओढ़कर
करे नौ–तपा पार
अगला साल आँख में भरकर
घर में खटा किसान !

* * * * *

कई दिनों के बाद
आज फिर सूरज निकला है।
केश सुखाती वस्तु बदलकर
ओस नहायी दूब,
ठण्डा कुहरा उतर शिखर से
गया ताल में डूब,
शंखमुंखी अजगर ने
चुप्पी का बन निगला है।

किरने कात रहीं मेंघों की
शेमेंदार रूई,
सरसों, धान, ईख बतियाते
रस की धार चुई,
हिम प्रदेश में जमा
गौन का पर्वत पिघला हैं ।[10]

* * * * *

चाज जरा सा पानी बरसा
जाग उठी आवाज नदी में
बोली नाव, किनारे बोले
लहरों के इकतारे बोले
झांझर, गागर बोली
जो भी थे वे सारे बोले
पानी ने जब छुआ, बज उठे
तरह तरह के साज नदी में।[11]

* * * * *

नाँचे मोर, पपिहरे बोले
मौन मछलियों ने मुंहखोले
सीपी हंसी, शंखभी गूंजे
पेड़-पेड़ पर पड़े हिंडोले
लहर-लहर में दीखी सबको
चिड़ियों की परवाज नदी में।[12]

ग्राम परिवेश में किसान-मजदुरों की रोजगारी की व्याथा, आत्मबुद्ध, शोषण, दमन, चौधरी, पंच, जमींदार, सरकारी अधिकारी, सतत संघर्ष में क्षत विक्षत अस्तित्व की तलाश में भटकता आमआदमी और व्यवस्था के कहर को रेखांकित किया गया हैं, वहीं दूसरी तरफ नगर परिवेश में भुका-मांदा गृहस्थ, मंहगाई, बेरोजगारी, आतंक, राजनीतिक भ्रष्टाचार

शोषण, संवाद, दमन, षड्यंत्र, का शिकार आदमी कक्षा, दर-कक्ष व्यवस्ता का मुहरा बनकर इधर -उधर भयाक्रान्त घूँमता दृष्टिगोचर होता है।

माहेश्वर तिवारी लिखते हैं-

चिट्ठियाँ लिखवा रहा है गाँव
अब घर लौट आओ ।

या फिर-सोमठाकुर के शब्दों में-

परियों के देश में न जाना युवराज ! तुम
जाकर फिर लौट नहीं पाओगे
पथराकर बेघर हो जाओगे ।

आशंकाओं और अव्यवस्थाओं के दौर में राजदरश मिश्र लिखते हैं-

दिन डूबा अब घर जाएँगे ।[13]

अधिकांश नवगीतकारों ने नगर परिवेश का निषेध किया है, उसे नकारात्मक दृष्टि से देखा है, कहीं भी शहरी सभ्यता के प्रति उसका स्वीकारत्मक स्वर उमर कर सामने नहीं आया। अरविन्द सोरल लिखते हैं

यह शहर अब बड़ा हो गया है
घर के झगड़ों से पहले डरे था
कैसे घुट-घुट कर रोया करे था
अब मुहल्लों को जलते हुए भी
बस्तियों को कुचलते हुए भी
देखकर उफ़ भी करता नहीं है
इस का जिगरा कड़ा हो गया है
यह शहर अब बड़ा हो गया है।

डॉ. विनोद निगम लिखते है-

खुलकर चलते डर लगता है,
बातें करते डर लगता है, क्योंकि शहर छोटा है।

ऊँचे है, लेकिन खजूर से मुँह हैं इसीलिए कहते हैं,
जहाँ बुराई फूले-पनपे, वहाँ तटस्थ बनते रहते हैं।

* * * * *

नियम और सिद्धान्त, बहुत ढंगों से परिभाषित होते हैं,
यहाँ बोलना ठीक नहीं है,
कान खोलना ठीक नहीं है, क्योंकि शहर छोटा है।

डॉ. विष्णु विराट लिखते हैं-

घुट रहा है इस शहर में दम
चलों घर लौंट जाएँ
दर्द का एहसास तो हरदम
चलो घर लौंट जाएँ ।[16]

जिस देश की अर्थव्यवस्थाका सबसे बड़ा आधार अब तक रवेती हौ, उस आधार क्षेत्र की उपेक्षा न केवल चिन्तनीय है, अपितु आनुषांगिक परिणाम दिखाई पड़ने लगे हैं। बीज खाद, और खेती के कार्य आने वाले मोहिक औरजारों की पूंजीपतियों या जमीदारों द्वारा तपशुदा कीमतें, अनुपलब्धता पानी और बिजली का संकट और तिसकर किसान को खटमल की तरह चूसती प्रशासनिक मशीनरी आदि के कारण समाज के इस गर्व की हालत लगातार खराब होती जा रही है। यह ग्रामीण परिवेश कथा नवगीत में अनेकों रूपों में व्यक्त हूई है। यथा-

गिरदावल की मर्जी
अपनी अर्जी है,
इन्तखाब पर सौ
पचास पर पर्ची है
खेती अपनी है
नक्शे पटवारी के।
चकबन्दी की चख-चख
सहन ओसारे में

बात-बात के
मुद्दे हैं बटवारे में
बात-बात में है
रंग पट्टीदारी के।[17]

एक दूसरी अभिव्यक्ति देखें -

गरदन एक हजारों फन्दे
देने को अपने ही कन्धे
कितने दस्तावेज लिखोगे पानी पर।
कोई आँधी दिया गुल करे
कोई बाग उजाड़े
कोई तपते माथे पर
हँस-हँस कर कीले गाड़े
भूख प्यास के बोझ तोलते
भरे धुएँ में पंख खोलते
कब तक लिये पहाड़ टिकोगे पानी पर ।

नवगीत कार ने गाँव की राजनीतिक बबत को और शोषण, दमन, आदि की प्रवृत्तियाँ अधिक बलशाली हुई हैं, परिणाम यह हुआ कि स्थिति बद से बहतर होती जा रही है यथा-

बिट्टो की अभी खबर आयी है
वह मरकर जीवित परछाई है
धांघरे का खून
अभी ताजा है
मुल्जिम को खास की दुआ है
पूरा गाँव नीद का सगा है
नया-नया तपेदिक लगा है
भूख प्यास / इसे नहीं लगती
पर्चे में हुक्म यह हुआ है ।[19]

* * * * *

धूप मछुवारिन के
जाल फँसी रोहू सी
इसकी हर हैसियत
गरीब की पतोहू सी
दो रोटी धोती को
आपसी अदाबत है।
घोड़ो के लिए उगी
घास है, बगीचा है,
कुर्सी के पाँव तले
गुदगुदा गलीचा है।
हर पाँचवे साल
प्रजातन्त्र की सजावट है।[20]

* * * * *

महुए नहीं, मुकदमें फूले
लाठी फलें बगीचे ।
जिनकी बाहें नदी खून की
पंच पाँव के नीचे ।
लगुआ की छलनी छाती पर
लट के सूद सिरोही,

* * * * *

सुधांशु उपाध्याय लिखते हैं
चारों तरफ धुँआ है,
पूरी चमरोंटी में केवल
एक कुँआ है।
राजा राजा प्रजा प्रजा है

तीन पीढियों का कर्जा है

कन्धे बदले

वही जुआ है ।

2) परिवारिक परिवेश : भारतीय सांस्कृति परिदृष्य में परिवार की भूमिका अहम रही है, परिवार और घर कोई भी संरचना एक साथ मिलकर रहने की भावना सामूहिक भाव बोध और सह अस्तित्व के लिए अन्तः प्रेरणा है। अन्तर्मन का भावविस्तार ही वह कारण रहा है जिससे अधिक से अधिक लोगों की बीच सुख-दुख बाँट कर रहनेकी आकांक्षा प्रबल रही

नवगीत में आस्था, हर्जोल्लास, प्रणय, रोमांश जैसे सुखद परिवारिक क्षणों की अभिव्यक्तियाँ पर्याप्त रूप से व्याप्त हैं। यहाँ संयोग पर अथवा प्रीतिपरक सन्दर्भो का पारिवारिक परिदृष्य में चिदोकर हुआ है, वह स्पष्ट रुप से परम्परा से पृथक प्रतीत हुआ है, माँ, ब़हन, बेटीं, भाई, पति, पत्नी, भाभी आदि सन्दर्भ परिवारिक परिवेश में चिहित हुए हैं। गाँव के परिवेश में पारिवारिक सम्मोबन का स्वर उभारत हुए अनुप अशेष कहते हैं -

गाँव हमारा

परदादा की मोह मोहब्बत का

पान बतौरवी

तीज-कजलियों

रिश्तों-सोहबत का

अपनी सीधी चाल चलन है।

यहाँ का भरमाना

भैया

शहर नहीं आना[23]

इस गीत में परिवार का आन्तरिक स्नेह और प्रेम अभिव्यक्त हुआ है इसी तरह एक परिवार का यह दृष्य देखें जिस में गुलाब सिंह ने बड़ी मार्मिकता से एक-एक चिज उकेरा है और जिसे पढ़ते ही दृष्टि-पटल पर फौरन एक दृश्य उपस्थित हो जाता है -

हरे लहरे खेत से रह काटती सोना पतारी

ले रहे बाबा हरि का नाम

खींचती अम्मा पकड़कर कोर चादर की
उठीं दीदी, जगीं अंगड़ाइयाँ
खनकता आंगन सँवरते बरतनों से
लीपतीं चौका ओसरा भोर सी भौजाइयाँ
दोहनी में धार, तार सितार के बजते
सुबह के संगीत होते काम।[24]

बाबा नागार्जुन का भी यह गीतांश देखें जिस में बहुत दिनों के बाद वार-परिवार में आयी खुशियाली का बयान अत्यन्त मार्मिक रूप से किया गया हैं

बहुत दिनों के बाद
अबकी मैंने जी भर देखी
पकी सुनहली फसलों की मुस्कान
बहुत दिनों से बाद ।
अबकी मैं जीभर सुन पाया
धान कूटती किशोरियों की
कोकिल कंठी तान
बहुत दिनों के बाद
अबकी मैंने जीभर सूंघे
मौल सिरीं के ढेर ढेर से
ताजे टटके फूल
बहुत दिनों के बाद
अबकी मैने जीभर
तालमखाना खाया
गन्ने चूसे जीभर
बहुत दिनों के बाद ।[25]

अनूप अशेष एक और नवगीत खण्ड देखें जिस में घर परिवार और गाँव की नैसर्गिक सुन्दरता और खुशिहाली की चर्चा की गई है -

कच्ची–सी उम्र
पकी बाली सी
धूप
आँगन में खनके
कंगन भर
सूप
माँ का प्रतिबन्ध मेरा गाँव
मान का अनुबन्ध
मेरा गाँव
नइहर से हरे खेत
पीहर सी
भेड़
बोलता प्रतीको में
बरगद का पेड़
पान का प्रबन्ध मेरा गाँव
मन का अनुबन्ध
मेरा गाँव।

उमाकान्त मालवीय लिखते हैं -

भइया को देती अंकवार
सखियों के रूधे हुए बैन
प्रियतम संग बींती जो रैन
दोनों ही करते बेचैन
दो सुधि में सखि का है
जीना दुश्वार
भाभी को देती अंकवार ।[27]

नवगीत में परिवाहिक व दाम्पत्य प्रेम उदभावना के अनेक ऐसे प्रसंग मिलते हैं-

टूटे आरती का बटन
या कुर्ते की खुले सियन
कदम-कदम पर मौके याद तुम्हें करने के ।

* * * * *

अरसे बदला रूमाल नहीं
चाभी क्या जाने रख दी कहाँ
दर्पण पर सिन्दूरी छींट नहीं
चीज नहीं मिलती रखदी जहाँ
चौके की धुंआती बटन
सुग्गेकी सुमरिनी रटन।[28]

श्याम सुन्दर दूबे लिखते हैं -

सांझ सबेरे
फिर आदिम भय
मन की देहरी घेरे
आंगन उतरा सघन अँधेरा
बीती धूप की टेरे ...!
सिसकी होठों थमी
देह से पूछें आँखे
कितने दाग चदरिया,
चोखट भीगी अंसुअन
हिचकन रोयी
सांकल चढ़ी किवरिया !
लौटी संझा / खोयी खायी
फिर भूतों के टेरे
छाती से चिपका भविष्य के
कोरे कठिन अंधेरे।

एक और परिवार की व्यथा कथा श्याम सुन्दर दुबे ने इस प्रकार कहा है

छज्जों चढ़कर
अड़बड़ बोले
तपे दोपहरी जेठकी !
बजरी पीटे
गिट्टी कोड़े
गाँव गिरानी
सड़को जोड़े !
शीतल पाटी
मालिक बैठे
रैमत गोत चपेट की !
फूटी बटुली
टूटा चुल्हा
रितु की पाग
लपटे दूल्हा !
सूखा बाढ़
अषाढों चढ गये
घर गिरवी अलसेट की।[30]

यश मालवीय पिता की अहमियत को गोतांकित करते हुए कहते हैं-

आज भी सौ जेहन जिन्दा
अधमरे से हैं जेहन में
पर सवेरा गूँथता है
हर कली में हर किरन में
सुनरहा ऊँचा कि फिरभी
आहटों पर कान-सा है।
पिता बूढ़ा है कि

कुछ दिन का कहो मेहमान सा है

राक के काले पहर में

एक आतिशदान–सा है।[31]

इसी पुकार माँ के सन्दर्भ नें सुधांशु उपाध्याय की यह पंक्तियाँ देखिए -

सुबह शाम खटती है

बेचन भी माँ

इच–इच घटती है

बेचन भी माँ

नागिन सी उठती है

पेट में लहर

आँखो में पलता है

भूख का शहर

आगे से हटती है

बेचन की माँ

रेलों से कटती है

बेचन की माँ।[32]

हृदय चौरसिया एक संत्रस्त एवम् संघर्षरत परिवार के थके हारे और टूटे हुए नौजवान बेटे की खीस को जज्बाती अन्दाज में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं -

ओ पिता !

जनमा कर तुमने

की क्यों

ऐसी भूल

दी सरिता ऐसी

जिसमें

न जल,

न फूल,

पल–पल बीता
जैसी दहकती चिता !
गिरवीं है घर आँगन
बिका आसमान,
जाने कब साँझ हुई
और कब विहान,
ढांव ढावं
बिखरी है
टूट अस्मिता
ओ पिता।[33]

या फिर अखिलेश कुमार सिंह भी इन नवगीत पंक्तियों का देखे जिसमें एक अबला नारी की दैनन्दिनी से जुड़ी उसकी मनोव्यथा की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है-

उपले पाथेगी
बासन मांजेगी,
पारबती अपने दिन
यूँ ही काटेगी
आँखों में
जंगल का
पांतर होगा
माथे पर
लकड़ी का
गट्ठर होगा,
गुमसुम आयेगी
गुमसुम जायेगी
सूरज या बादल की
ओर न ताकेगी।

टूटे हुए पारिवारिक अस्तित्व और उसकी त्रासवादी सदी को व्यक्त करते हुए गुलाबसिंह लिखते हैं -

बप्पा सिर पर हाथ घरे हैं
माँ बैठी है मन मारे
टूटी छत के तले
भाइयों के
अन्तिम बंटवारे।
घर के दिन सो गये
शाम की
सिली पिछौरी साटकट
बच्चे जैसे
खुले महाजन के खातों के पन्ने
बूढे लगते हैं
मुनीम के अद्धे और पवन्ने
बहन चौधरी की मर्जो सी
बिरादरी की टाट पर।

कुमार शिव ने जीवन की जरिटलताओं, गरीबी, विवशता, और इन सबसे उत्पन्न दथनीय किया है आज की बदली हुई सामाजिक परिस्थितियों के परिवार स्वरूप सम्बन्धों के पथरायापन ने व्यक्ति को बहुत अकेला कर दिया है यथा -

जब तक उपयोग हमारा
चाहे गये यहाँ लोगों से
किन्तु लग रहे अब उनको ही
अब रद्दी अखबार से ।
सूर्ख स्याह रंगों की
तिथियों के कारण ही
सुबह शाम हम

चर्चित रहते थे इस घर में
सूरज का पहिया लेकिन
तेजीसे घूमा
पीछे छूटे हम
जीवन के तेज सफर में।
हुए निरर्थक
कोई चाहे फाड़े या फेंके रद्दी में
नहीं हमें अब लेनादेना
शोक-दिवस त्योहार से।[36]

* * * * *

बहिना की शादी में
रेहन रख दिया था जो
कर्जो मे डूबा आकण्ठ वह मकान
मॉडने कढ़ा हुआ।
लालटेन का प्रकाश
रात-रात भर जगना
पर्चों की तैयारी।
बाबू जी की मिर्गी
अम्मा का गठिया
लम्बी असाध्य बीमारी।
कितने संघर्ष -भरे दिन इस में बीते हैं
बाबजूद आंधी तूफानों के वह मकान
गाँव में खड़ा हुआ।[37]

ऐसे ही दृष्ट नवगीतकार प्रेम तिवारी ने अपने इन नवगीत पंक्तियों में उकेरा हैं जिसमें एक परिवार की बदहाली और उस के घर की जर्जर हालत का बयान किया गया है-

नीम–हकीम

भर गया कबका

घर आँगन बीमार

बाबू जी तो

दस पैसा भी

समझे हैं दीनार

ऊब गई हूँ

कह दूंगी मैं ऐसी वैसी बात।

दादी ठहरी भौत पुरानी

दिन –दो दिन मेहमान

गुल्ली–डण्डा

खेल रहे हैं,

बच्चे हैं नादान

टूटी छाजन

झेल न पायेगी अगली बरसात।[38]

श्रीकृष्ण शर्मा एक दूरस्थ पुत्र की यथा स्थिति का चित्रांकन करते हुए कहते हैं

हे पिता ! यदि हो कहीं

तो क्यां लिखूं तुमको

बस यही जो जिस तरह था

उस तरह ही है।[39]

दिनेश सिंह ने रसोइये का गीत में अम्मा और कहना के प्यार की दुर्लभ स्थिति को चिडित किया है उनके अधिकाकांश गीतों मे ऐसे दृष्य दिखाई पड़ते हैं जो पाठक या श्रोता को संवेदना के स्तर पर झक झोरते हुए आत्मविभोर कर देते हैं । जैसे –

दुख मेरे मैके से आया

सासू का बड़ बोला जाया

सुख की खेती जोते बोये

बासंती आठ पहर रोये
भुखिया ना अंगरेजी जाने
चूल्हे की रोटी पहचाने
सेन्दुर के रंग सनी बड़की
तानों की पिचकारी ताने
रंग धुले छिन छिन पर काया
जूठी थाली जैसी माया
भाई की सुधि हिया करोये
बासंती आठपहर रोये।[40]

3) सामाजिक परिवेश : समाजिक परिवेश का मुख्य केन्द आम आदमी ही रहा है, इस परिवेश में समाजगत रूढ़ियों संयुक्त परिवार, आज भी परिस्थितियों से हावी होकर बिखरता हुआ या फिर टूटता हुआ परिवार नजर आता है जहाँ कल तक समाजगत विशेषता यह थी लोगों के बीच आपसी प्रेम सम्बन्ध, खुशियों, हर्षोल्लास, आन्द से व्यक्ति जीवन यापन करता था किन्तु आज वे सारी की सारी चीजे समाज से तिरोहित हो गयी हैं। अर्थात समाज में आज व्यक्ति एक मुखोटा बनाकर रह गया है, परिस्थितियों के अनुरूप वह अपने रूप को बदल कर प्रस्तुत करता है। शंभुनाथसिंह, अनूप अशेष, देवेन्द्र शर्मा, इन्द्र कुमार शिव, शिव बहादुर सिंह भदौरिया व गुलाब सिंह जैसे नवगीतकार हैं जिन्होंने अपने गीतों में सामाजिक चिन्तन को समाविष्ट किया है कुमार शिव लिखते हैं -

जलपोतों के
भीरत बाहर मौन है
निर्देशक
इस सन्नाटे का कौन है ?
प्रश्न कर रहीं
भूक वटों से
झील अँधेरे सी।

अनूप अशेष के निम्न नवगीत पंक्तियों की कुछ ऐसी ही बात कहती हैं

सिलसिले

चलते रहे

जब भी मिले

ऐसा सूना घाट

नीली झील

खाली घर

साथ में

सोये हंसे

दो– चार बातें कर

याद के

तिरते लहर में

काफिले।[42]

रामचन्द्र चन्द्रभूषण अपनी समाजगत संकल्पना को व्यक्त करते हुए कहते हैं

तोडूंगा शब्द

जोडूंगा सेतु

हाँकूंगो रथ

बदलूंगा लीक

ओर सागर को यह चेतावनी भी

कि सुना सागर

फिर उठाओ आँखियाँ।[43]

इसी तरह जहीर कुरेशी कहते हैं -

हम स्वयं से भी

अपरिचित हो गये हैं

रास्ते हैं

और उन की दूरयाँ है

दूरियों की भी

अलग मजबूरियाँ हैं
इस भटकते रास्तो में
खो गये हैं
वासनाएँ
जिन्दगी से भी बड़ी हैं,
प्यास बनकर
उम्र की छत पर खड़ी है,
तृप्ति के पथ पर
मरुस्थल सो गये हैं।[44]

* * * * *

भीतर से तो हम स्मशान हैं
बाहर मेले हैं
कपड़े पहने हुए
स्वयं को नंगे लगते हैं,
दान दे रहे हैं
फिर भी भिखमंगे लगते हैं,
लकड़ी के धोखे में
बिकते हुए करेले हैं
इतने चेहरे बदले
असली चहेरा याद नहीं,
जहाँ न अभिनय हो
ऐसा कोई संवाद नहीं,
हम द्वन्द्वों के रंगमंच के
पात्र अकेले हैं।[45]

समाजिक संरचनाओं तथा विद्रूपताओं के बीच संयम का भाव भी छुपा हुआ है और विद्रोह का भाव भी किन्तु ये सारी बातें एक रचनात्मकता के साथ व्यक्त होती हैं ।

एक अन्धी अपेक्षा की खीझ में
नोचते निरुपाय अपने पर
थी न गुंजाइश
मगर अब क्या करें
उग रहीं जब नागफनियाँ खेत में
यों निहत्थे
लड़ रहे इस युद्ध में
सूचियों में नाम है फिर भी
सिर्फ जीते की निरर्थक शर्त पर
रख दिया ईमान तक गिरवी।[46]

समाजिक व्यवस्था का सबसे बरा शिकार आम आदमी ही रहा है, जो स्वयं की अस्तिमा को सुरक्षित रखने के लिए हर संघर्षरत रहेता है वह बार-बार जिन्दगी को स्थापित करने की चेष्टा करता है और बार आरोपित व्यवस्था उसे उखाड़ फैकती हैं नवगीतकार कहता है-

इस अंधेरे गीधवन के
बरगदों पर
एँ बया तू क्यों बनाती घोंसला ।
एँ बया, तू गीत मत गा
गीत सुन कोई सिपाही
तीर तेरे कंठ में खच से गड़ा देगा
एँ बया, मत यह
खुश मत हो, यहाँ पर
पंथ परमेश्वर
तुझे चोपाल पर
फाँसी चढ़ा देगा
भाग जा, उड़जा

अभागी तू बया,
इस वनांचल से
व्यर्थ है यह घर बसाने की कला[47]

सामाजिक व्यवस्था में बदलाव आता गया कुछ नये मुखोटे सभ्यता के आचरण में आश्वस्ति व धर्म प्रदान करते हुए आते हैं, किन्तु आम आदमी का इन पर से अब विश्वास उठ गया है। नवगीतकार कहता है -

आप बस्ती मे रहेंगे
आदमी बन
छोड़िये बेकार की बातें
ज्यों ढला सूरज
कि कैंचुल छोड़ती सी
भूत सी काली भयावह फैलती हैं,
हाल ये, आत्मीय सी परिछाइयों का है,
जंगली फल
पेड़ से टूटा
शिला दर शिला होता
जा गिरा विकराल मुंह में
ये चलन अन्जान अन्धी खाइयों काहै
कल तलक गुलजार ये होगा चमन
छोड़िये बेकार की बातें।।[48]

4) धार्मिक परिवेश :- वर्तमान समय में धार्मिक आधोरों को स्वीकार करने के लिए धार्मिक एवं साम्य दामिक विश्वासों को चुनौती दी जा रही है, यहाँ इस का मुख्य प्रतिपादा यथार्थ के समानात्नतर पर पौराणिक एवं ऐतिहासिक सन्दर्को की नये सिर से पुनर्गठित करना है। यथा-

हिल रहा है इन्द्र का आसन अचानक
तप रहा कोई तपी संकल्प लेकर

तोप के मुँह पर्वतों की ओर क्यों है
कन्दराओं के, गुफाओं के मुहाने
फूटते बारूद के गोले धमाधम
अणु परीक्षण के भयंकर शोर क्यों हैं
हंस रहा है इन्द्र, ब्रह्मा मुस्कराता,
अप्सराएँ बारूणी के चषक देती
फैलता मद
फिर व्यवस्था होश खोती
फिर धुएँ में डूबता है शहर
बस्ती कॉपती है।[49]

नईम ने अपने नवगीत में धार्मिक भावना को कुछ इस प्रकार से प्रस्तुत किया है-

अर्थ धुंधले हुए
शब्द वासी हुए
कुर्क होकर रहे
खेत, खलिहान, घर
जन्म से ऋण ग्रसित
हम प्रवासी हुए
दाहिने देवता
वाम हैं देवियाँ
दौड़ता ही रहा
इस नगर, उस नगर
ये मगहर हुए
वो न काशी हुए
अर्थ धुंधले हुए
शब्द वासी हुए।[50]

या फिर

रावण ही रह गये आज प्रभु को उपसने
रूई बन्द कर दी देना देशी कपास ने
प्रभु चोरों का भाग्य विधायक
ये कहते है
वो कहते है
ऐसा कोई रूल नहीं हैं ।[51]

अमरनाथ श्रीवास्तव बयान करते हुए कहते हैं

पुस्तैनी रामायण

बंधी हुई बेठन में

अम्मा ज्यों जली हुई

रस्सी हैं ऐंठन में

बाबू पसरे जैसे

हारकर जुआ।[52]

उमाशंकर तिवारी लिखते हैं

गंगोत्री में पलना झूले
आगे चले बकइयाँ
भागीरथी घुटुरवन डोले शैलशिखर की छईयाँ
भूखा कहीं देवव्रत टेरे
दूध भरी है छाती
दौड़ पड़ी ममता की मारी
तजकर संग संघाती
गंगा नित्य रंभाती फिरती जैसे कविता गइया,
सारा देश क्षुधातुर बेटा, वत्सल गंगा मइयाँ,[53]

रवीन्द्र भ्रमन ने अपने गीतों में धार्मिक पौराणिक रूपों को इस रूप में व्यक्त किया

है -

रुके न तटपर किसी लहर के पाँव
नदिया बहती जाये।
बीत गयी पूजा की बेला
मन्दिर में उदास बैठा है इष्ट अकेला,
सन्नाटे में डूबा गाँव-गिराव
नदिया बहती ही जाये।
जोगी-जती, साधु सन्यासी
जिनकी मुट्ठी में मथुरा, करतल पर काशी
रोक न पाये धारा को इस गाँव
नदिया बहती ही जाये।[54]

ऐसे कई नवगीतांश उद्धृत किये जा सकते हैं जिसमें धार्मिक, पौराणिक, मस्जिद, मंदिर आदि का मिथकीयता प्रदान करते हैं, कुछ और उदाहरण दृष्टव्य हैं -

गिरती दोवाल रोक लेने को
एक भजन मण्डली उपासी
यात्राएँ भूल रहे मेघदूत
भूल रहे विरहाकुल संगी ।
वह कुबेर अलका तक आ पहुँचा
यक्ष प्रिया व्याकुल तन्वंगी।
द्रौपदियाँ नग्न हो रही हैं
एक चीर भेटों अविनाशी।[55]

* * * * *

किताना घायल है यह अधमरा
एक यक्षप्रश्न में युद्धिस्ठिर
ओछी इच्छाओं ने फिर सृष्टा

एक महाभारत का व्योमतिमिर।
एक कृष्ण व्याध ने विदीर्ण किया,
शंख चक्र कौन ने चुराया।
चिर अरण्य विचरण में श्रांत-श्रांत
कन्धों पर अपना ही शव लिये।
अट्टहास करती पागल प्रज्ञा
उन्मादिन आसुरि आसब पिये।
बाध्य हुए सूरज ने जाने क्यों,
भोर पर्व रात में मनाया।[56]

* * * * *

एक प्रार्थना जगी कि पंछी नाचे पंख पसार
राग भैरवी छेड़े कोई
बेला है अनुकूल
सुबह घूँमने निकले ये हम
गये रास्ता भूल
मंदिर की घंटिया बजी, मस्जिद में हुई अजान।
शायद गहरी निद्रामें थे करूणानिधि भगवान।[57]

* * * * *

गंगा जल देना था जिनको
मय की बोलल लिये मिल वो
प्रहरी थे जो राज नगर के
सेंघ लगाते हुए मिले वो
बड़ी-बड़ी बातें अधरों पर
इंच-इंच भर की मुस्काने।[58]

सारांसतः यह कहा जा सकता है कि धार्मिक पौराणिक रूढियों का, पाखण्डों की नवगीतकरों ने अपने नवगीतों में विश्ष्ट ढंग से अभिव्यक्त किया है।

5) आत्मीय संवेदनाएँ : नवगीत का मुख्य स्वर सामान्य व्यक्ति के उस वातावरण की सृष्टि करता है, जहाँ अपने लोग हैं, अपना स्वार्थ है, अपने स्वाभाविक परिवेश को रेखांकित करता है। जहाँ वह स्वंय मौजूद रहता है, कवि की अपनी व्यक्तिगत आत्मीयता एक निश्चित संवेदनशील घर, कुटुम्ब, बन्धु, बान्धव, मिक्ष, परिवार आदि उपस्थित हैं। समय की विभीषिकाएँ गीतकार को व्यथित भी करती हैं और उदेसित भी। वह वैयक्तिक अनुभूतियों के आधार पर समष्टिगत चेतना को आत्मीयता के परिवेश में ही उजागर करता है वह बार-बार खुशियों की संभावनाएँ तलाशता है, हर्ष और संतुष्टि के क्षण ढूंढता है, किन्तु व्यवस्था के बदलाव के कारण जो अलगाव सामान्य जीवन में उत्पन हुआ है, वह हर समाजिक व्यक्ति को बहुत दूर तक छीलता कुरेदता चला गया है।

समाजिक परिवेश में सबसे बड़ी त्रासदी है- मूल्यहीनता की नवगीतकार रमेश गौतम लिखते हैं-

एक कोना ढूँढती फिरती अभागी आँगनों के बीच
माँ तुलसी हमारी
छीन ली आकाश चुम्बी
होटलों ने
द्वार से पीपल पिता को
भूमि सारी
जो बना आदर्शवादी
बस्तियों में
फिर उसे बनवास
बर्षों का मिला
नयन में नीली प्रतीक्षा बाँधकर
हो गई मनकी
अयोध्याएँ शिला।[59]

इसी क्रम में जब व्यक्ति अपने वजूद से अलग-अलग पड़कर अपनी पहचान ही खोदता है तब अपने इर्द-गिर्द उस के आत्मीय सम्बोधन भी आडम्बर युक्त होकर पहचान की सीमा से दूर हो जाते हैं। उमाशंकर तिवारी के नवगीत की निम्नलिखित पंक्तियाँ इस बात की पुष्टि करती हैं -

सफर के वक्त मेरे साथ मेरा घर नहीं होता
कभी शीशा चिटकते का भी मुझ को डर नहीं होता ।
सफर में सिर्फ़ चलती सांस, जिन्दा पाँव ही होते
कोई मंजिल, कोई भी मील का पत्थर नहीं होता ।
यही पैगाम लेकर मैं कभी,
घर से निकल जाता
तो मेरे सामने होते हजारों आईना चहेरे,
शिखर को चूमते चेहरे
खुशी से झूमते चेहरे।[60]

नवगीत में आत्मीय संस्पर्श का एहसास स्थान स्थान पर व्यक्त हुआ है। अनूप अशेष की इन नवगीत पंक्तियों को देखे, जिसमें आत्मीय संस्पर्श का अत्यन्त ही अनोखा दृश्य दिखाई पड़ता है-

कितनी बार अंधेरा जागा
कोहरा कितनी बार ।
खाली कुआँ मुंडेरी पकड़े
रोया कितनी बार ।
अक्सर घर में रही रसोई
बिना गन्ध के सोयी
बच्चों की आँखों में
अम्मा के आँचर में रोयी ।
कितनी बार भोर की किरनें
आयी भूख परवार ।

अपने दरवाजे देहरी पर

दिन की दीढ उतार।[61]

इसी स्वर को बल देते हुए यश मालवीय कहते हैं -

पिता बूढ़ा है कि
कुछदिन का कहो महेमान सा है
रात के काले पहर में
एक आतिशदान – सा है
यह अँधेरा और गहरा
और भी गहरा
बहुत मुश्किल से
उजाला एक भी आखर लिखेगा
मौन दरवाजा भले जर्जर
कि घर की शान – सा है।[62]

अशोक अन्जुम लिखते हैं -

हमीं जब संभले नहीं तो
आँधियों से क्या गिला ।
टूटना ही था किला ।
काम अपने नाम के थे
रास्ते भी ये गलत
और सोचों पर जमीं थी
धूल की मोटी परत,
और उस पर साथ अपने
साजिशों का काफिला
टूटना ही या किला ।
गोटियाँ हमने बिढाईं
कुछ इधर या कुछ उधर

जाल बुनते ही रहे हम
कब रूके फिर उम्रभर
यूँ उजालों ने सचेता
पर थमा कब सिल सिला ।
टूटना ही था किला ।[62]

वर्तमान जर्जर व्यवस्था ने व्यक्ति, विशेषकर जनसामान्य को जैसे जड़ कर दिया है। आत्मीयता जैसे मर गई है। जीवन मूल्यों का व्यवसायी करण हो गया है। व्यक्ति निहित निजी स्वार्थो के तहत अपने वैयक्तिक सरोकारों को बदल रहा हैं-

एक एक सर पीठे
छूट गये सारे
वे दूआ सलामों के
बोझिल सम्मोहन
बर्फीली खूहों में
तोड़-चुके दम हैं
रोमिल खरगोशों से
परिचित सम्बोधन
एक अजनबी नहीं मरा
हर नजर में[63]

ऐसी ही आत्मीय अभिव्यक्ति निम्न नवगीत खण्ड में देखें जिसमें व्यक्तिगत मनोव्यथा को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि वह, समष्टिगत दृष्टि पटल पर अनायश ही दृष्टिगोचर होने लगती है इन पंक्तियों में कवि की अपनी अनुभूति जन-साधारण की आत्मा का स्पर्श करती प्रतीत होती है-

घर के हैं हालात बुरे कैसे घर जाऊँ
उलझे हैं अरमान अरे कैसे सुलझाऊँ ?
दादा दादी पके पान से
जीर्ण शीर्ण जर्जर मकान से

अम्मा बाबू उम्र ढले हैं

भाग दौड़, के इम्तहान से,

अपना कहते जिन्हें शान से

बेच दिये हैं वही जान से

अपने अपने स्वार्थ भले हैं

बन बैठे हैं सब महान से ।

सबके हैं अन्दाज खरे, कैसे समझाऊँ ?

घर के हैं हालात बुरे, कैसे घर जाऊँ।[64]

नवगीत कार ने आत्मानुभूति के विसर्जन के बगैर ही गीत को सयाष्टि की अनुभूति के साथ जोड़ा है। अन्य शब्दों में, समष्टि के उस तीव्र संवेदन को, जो सामाजिक सन्दर्भो से रचनाकर को अभिव्यक्ति के लिए बाध्य कह रहा है, जब अपने भीतर भी स्पन्दित पाया है, तभी उसे अभिव्यक्ति दी है, नवगीतकार देवेन्द्र शर्मा इन्द्र की ये नवगीत पंक्तियाँ यही बात कहती हैं -

शाख से टूटकर

एक पत्ता गिरा -

धुन्ध में खो गई

एक दीपावली

प्यास की आँख में

रिक्त गंगाजली

एक सपना

अपाहिज

नदीपर तिरा।[65]

नवगीत में केवल पीड़ा को ही अभिव्यक्ति नहीं मिली है, अपितु उसने आधुनिक जीवन के प्रायः सभी सन्दर्भो की अभिव्यक्ति की है, आज सम्बन्ध पथरा गये हैं, युग की भौतिकता में मानवीय संवेदना को ढूंढना आसान नहीं है, भीड़ के शोर में आदमी बहुत अकेला और अजनबी हो गया है-

धूप के हुए

न कभी छाँव के हुए

हम जब भी हुए

शकुनि दाँव के हुए

लाक्षागृह

पड़यन्त्रों के सुघड़ बनायें

अपने ही

स्वजन हमें शत्रु नजर आये

शहर के हुए

न कभी गाँव के हुए

धूप के हुए

न कभी छाव के हुए।[66]

उसके एक ओर कोलाहल भरा गर्जता हुआ समुद्र है लो दूसरी ओर उसके भीतर का निचाट सन्नाटा है

घरों से

उठती भमक सी

छतों से उढता धुआं हैं ?

पतियाँ गुमसुम

शहर में

आँधियों के सिलसिले हैं

देशद्रोही हो गये मन्दिर

बने घर-घर किले हैं,

हर किसी की आँख में

अवसाद का दिखता धुआँ है

इस समय को क्या हुआ है।[67]

वर्तमान समय में बाह्य और आन्तरिक दबावों के बीच आदमी का टूटना पिसना मात्र

नियति रह गई है-

बाहर से भरा भरा जीता है आदमी
उतना ही भीतर से रीता है आदमी ।
लगी हुई राशन में
भूख की कतारें
खर्चे की सुरसा को
किस तरह उतारें
कितने दुख दर्दो की गीता है आदमी
दीप लिये जीवन में
इतने अंधियारे
बढते कोलाहल में
अब किसे पुकारें
अपना ही खून आज पीता है आदमी।[68]

अतएव यह कहा जा सकता है कि नवगीत की वेदना बहु आयामी है जो कवि और जन-समान्य की आत्मानुभूतियों से निस्सृत होती है और पाठक या श्रोता का आत्मीय संस्वर्श करती हुई अग्रसर होती है, नवगीत में रिक्तता का बोध बहुत तीव्र है। इसीकारण यहाँ मौत, उदासी भयंकर सूनापन, और नितान्त अकेलापन एक भटकती सूनी आवाज सा मिलता है, यह एक भटकती सूनी आवाज सा मिलता है यह आवाज समूचे युगकी अनुभूति तो है ही, साथ ही गीतकार का आत्मनुभव भी है यह सूनापन नगर बोध के द्वारा और तीव्र हुआ है-

मन है एक, दर्द है अनगिन
किसमें कहें व्यथा,
भीतर सब कुछ टूटा टूटा
बाहर जुड़ा जुड़ा
भूखा पेट रहा दौड़ता
मारे मारे फिरे
शहर तक पाँव भगा लाये,

दस्तक थकी थकी
भाल पर चोट लगा लाये,
विज्ञापन सी हूई जिन्दगी
खोया अपनापन
फटी जेब में जैसे कोई
कागज मुड़ा मुड़ा

ग्राम्य संस्कृति कार शहरी करण और शहरों का विदेशी करण :

आधुनिक युग में ग्राम्य संस्कृति का शहरी करण होने लगा है गाँव में परिवर्तन हो रहा है। सड़के बन गई हैं। बिजली आ चुकी है ट्युबबेल चलने लगे हैं बैलोंकी जगह ट्रेक्टर घूमने लगे है। विभिन्न वैज्ञानिक उपकरणों ने खेत-खलिहानों में होने वाले कार्यो को आसान बना दिया है, पक्के मकान भी बन गये हैं। अर्थात, अब न वे धूल भरी पगडंडियाँ हैं, न दर्रे हैं, न बैलगाड़ी है और न ही कुएँ की जगत पर बैठकर गन्ना चूसते हुए लड़कों का समूह दिखाई पड़ता है, न पनघट पर ग्राम्य बधुओं, कन्याओं की खिलखिलाहटें हैं, न आम-इमली के नींचे डाल पकड़ कर झूलते बच्चे हैं, न हुक्कों की गुड़गुड़ाहट है, न अतिशय सत्कार की सुगन्ध, न संयुक्त परिवार की खुशिहाली है और नहीं मुहल्ले के चबूतरों पर शाम की चर्चा करते बुजुर्ग! लगता है गाँवों की पहचान का धीर-धीरे विदेशीकरण होता जा रहा हैं। मुक्त व्यापार, मल्टीनेशनल कम्पनियाँ, मल्टीप्लेक्ष संस्कृति तथा मांल संस्कृति का विकाश यातायात के साधनों में परिवर्तन, दूर संचार माध्यमों का परिवर्तन आम आदमी के जीवन मूल्यों को बदल कर रख दिया है। इसमें वह कहीं न कहीं अपने अतीत को तलाशता है। नगरों का प्रदुषण भरा जीवन उसे हसोत्साहित कर देता है।

ये शहर होते हुए से गाँव
पहचाने नहीं जाते ।
लोग जो फौलाद के मानिन्द थे,
अब रह गये आधे
दौड़ते फिरते विदूषक से
मुरेठा पाँव में बाँधे,

नाम से जुड़ते हुए कुहराम

पहचाने नहीं जाते

अब न वे नदियाँ न वे नावें

हवाएँ भी नहीं अनुकूल

हर सुबह होती किनारे लाश,

पानी पर उगे मस्तूल

आँधियों के ये समर्पित भाव

पहचाने नहीं जाते ।[70]

नवगीत में गृहस्ति की अभिव्यक्ति का कारण भी अपने सहज निसर्ग परिवेश से कट कर गीतकार के एक अनवरत चंद्रणा क्रम से जुड़ जाने का परिणाम है। जिस जमीन से वह उखड़ा है, उस के सांस्कृतिक परिवेश का छूटना वर्तमान जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना है-

यह शहर जिसको

हृदय में प्यार से मैंने बसाया

घुटन बनकर रह गया है

जिन्दगी के वास्ते

चलूँ इसको छोड़ अपना गाँव ले लूँ ।

छोड़ता हूँ सांस

तो लगता कि जैसे

धुँआ प्राणों से निकलता है

बात करता जब किसी से

कण्ठ में तब दर्द का

पत्थर फिसलता है

आधुनिकता की सभी बैसाखियाँ

जो मिली मुझको

ग्रहण अब वे बन गई हैं

जिन्दगी के वास्ते

चलूँ इनको छोड़ अपने पाँव ले लूँ ।[71]

नवगीतकार वायबी परिकल्पताओं के भव्य भावनों से उतरकर गाँव और कसबों की झुग्गी झोपड़ियों तक पैदल चला आता है, शहर की चकाचौध से दूर वह गाँव के परिवेश की गन्दगी से रू-ब-रू होता है, वहाँ के अभावों से निर्धनता से, संत्रास और दमन से जुड़कर अपनों के बीच जोड़ने का साहस करता है, रूमानी कल्पना की उड़ान से उतर कर वह जमीन पर आता है, शहर के प्रदूषित बदलाव से वह घबराता है। गाँव से भागकर शहर आया हुआ आदमी शहर के सम्मोहन से दूर होने लगता है-

कत्लगाह तक लाए
छोड़ गयी
मुझको इस शहर की हवा
चढी उमर सी पक्की सड़कों ने
भारी से मन की
हर गन्ध लूट ली,
लाल, हरी, पीली रोशनियों में
तन की परछाई तक छूट ली,
तेज धार दुपहर की धूप में
छोड़ गयी
मुझको इस शहर की हवा।[72]

शहरी जिन्दगी से वह शीध्र ही ऊब जाता है, वह शहर छोड़कर जाये भी तो कैसे, यहाँ रहना उस की विवशता है, आखिर वह क्या करे ?

इस तरह मौसम बदलता है
बताओ क्या करें ?
शाम को सूरज निकलता है
बताओं क्या करें ?
यह शहर वह है कि जिसमें
आदमी को देखकर
आईना चहेरे बदलता है,

बताओ क्या करें ?

आदतें मेरी किसी के

होठ की मुस्कान थी,

अब इन्हों से जी दहलता है,

बताओं क्या करें।[73]

डॉ. विनोद निगम लिखते है-

बाहरी आवाजों के घेरे

ध्वनियों के छोड़कर अँधेरे

गीतों के गाँव चले आये

सड़कें थी, सड़को में घर थे

कोलाहल से भरे सफर थे,

हम थे सूखे वृक्षों जैसे,

जंगल से जल रहे शहर थे

छोड़ सुलगते सवाल सारे

सारे सम्बन्ध रख किनारे

अपनी चौपाल चले आये

बेबस बेहाल चले आये

गाँव का शहरीकरण होता, वहाँ कल कारखानों का स्थापित होना और औद्योगिक विकास के क्रम में ग्रामीण संस्कृति संपूर्णत : विनष्ट हो रही है। इन सबंध में माहेश्वर तिवारी कहते हैं-

रंग भरी संध्याएं लगती हैं

तितली के कटे हुए पंख ।

कुहरे में डूब गये झोंपड़े

लगते है, टूट गये शंरव ।

बंजर धरती, सूखे तालों में

हाँफ रहा है मेरा गाँव

कोहरीले धुएँ और बूढ़े

धूप अँधेरे में

सन्नाटा चीर गया पाँव।[75]

या फिर

हाथ में पत्थर लिये बेखौफ

शहर की हद तक चले आये

गाँव की ये लोग अधनंगे

गाँव के सरपंच कहते हैं

वे शहर की धूप बाटेंगे

चांदनी के भाग कर देगें

वे नदी के धार काटेंगे

हाथ में जलती मशालें ले

भीड़ सूरज का करे बन्दन

सोचियें, ये सोच बेढंगे

शहर की हद तक चले आये।[76]

वस्तुत गीत और नवगीत की धुरा मानवीय संवेदनाओं के विविध अनुभवों पर आधारित रही है, जहाँ मनुष्य अपने आसपास की जिन्दगी में बिखरे हुए आत्मीय सम्बन्धों की अहिनियत से जुड़ता है। गीत और नवगीत का रागतत्व इसी संवदेना से संस्पर्शित है जहाँ मनुष्य के सामने उस का पूरा परिकर और परिदृश्य सब उपस्थित रहता है और यह परिदृश्य समाज, परिवार, के विस्तृत सांस्कृति परिवेश को आत्मसात किये हुए हैं।

इस संदर्भ में संवदेनाओं के लोकाग्रही रूझान गीतों और नवगीतों में अधिक मुखर हुए हैं।

स्वतन्त्रता बाद का मोहभंग व्यक्ति भी संवेद्य सोच को क्षरित करता रहा है और धीरे

धीरे व्यक्ति अपने बदलते जीवन मूल्यों के तहत सम्पूर्ण सांस्कृतिक विरासत को विस्मृत भी करता रहा है व्यक्ति का यह दर्द आज के नवगीतों में अधिक मुखर हुआ है। इस से पहले साठोत्तरी हिन्दी गीतों में रचनाकार की वैयक्तिक पीड़ा अधिक मुखर हुई थी जी बाद में नवगीतों में समष्टिगत संवेदना के साथ व्यक्त हुई है।

अतः कह सकते है कि गीतों और नवगीतों में भारतीय संस्कृति के अतीत की सुगंध वर्तमान है वहाँ बदलते परिवेश और टूटते जीवन मूल्यों की पीड़ा भी संवेदना के स्तर पर हमारे सांस्कृतिक परिदृष्य को गीतांकित करते हैं।

सन्दर्भ सूची

1 डॉ. रामविलास शर्मा : परम्परा का मूल्यांकन पृ. 15
2. डॉ. सत्येन्द्र शर्मा नवगीत संवेदन और शिल्प पृ. 211
3. रेल्फ फोक्स उपन्यास और लोकजीनत (अनुवादक नरोत्तम नगर) पृ. 143
4. नवगीत अदेशती पृ. 60
5. भव्य भारती नवगीत शिखर 1999 पृ. 28
6. नवगीत अद्वेशली पृ. 257
7. नवगीत अद्वेशली पृ. 155
8. नवीन प्रकास सिंदे नवगीत भव्य भारती नवगीत शिखर पृ. 42
9. अनूप अशेष वही पृ. 34
10. देवेन्द्र शर्मा इन्द्र सार्थक (अक्टूबर 1999) पृ. 20
11. कुंवर बेचैन मधुमती अपैल 1998 पृ. 74
12. डॉ. विष्णु विराट भव्य भारती नवगीत शिखर (1998) पृ. 85
13. वही पृ. 86
14. अरविंद सोरल वही - पृ. 20
15. डॉ. विनोद निगम वही पृ. 32
16. डॉ. विष्णु विराट धुमवत से लौटते हरी पृ. 33
17. प्रेमतिवारी नवगीत अर्द्वशती पृ. 153
18. विमल किशोर नवगीत दर्शक -3 पृ. 68
19. अनूप सिंह बहमेरे गाँव की हंसी थी पृ. 20
20. गुलाब सिंह नवगीत दशक -2 पृ. 98
21. वही पृ. 99
22. सुधांशु उपाध्याय नवगीत अर्द्वशती पृ. 273
23. रमेश रंजक किरन के पाँव पृ. 11
24. नवगीत दर्शक 2 पृ. 84
25. डॉ. विष्णु विराट कूमवत से धूमवन से लौटते हुए पृ. 57
26. डॉ. शम्भुनाथसिंह वक्तभी भी मी पर पृ. 01
27. रमेश रेजक रास्ता इधर है पृ. 45
28. उमाकान्त मालवीय एक चावल ने दहीधा पृ. 18.19
29. श्यामसुन्दर दूबे नवगीत अर्द्धशती पृ 258
30. श्यामसुन्दर दूबे नवगीत अर्द्धशती पृ. 256
31. यशमालवीय भव्यभारती नवगीत शिरकर (1999) पृ. 27
32. सुधांशु उपाध्याय नवगीत दशक 3 पृ. 56
33. कदम चौरसिया नवगीत अर्द्धशती पृ. 302
34. अखिलेश कुमार सिंह नवगीत दशक 3 पृ. 26
35. गुलाबसिह नवगीत दशक 2 पृ. 103
36. कुमार शिव नवगीतदर्शक 2 पृ. 24
37. कुमार शिव नवगीतदर्शक पृ. 25
38. प्रेमतिवारी नवगीत अर्द्वशती पृ 154

39. श्रीकृष्ण शर्मा आणकल, जुलाई 1978
40. दिनेश सिंह नवगीत दर्शक 3 पृ 121
41. नवगीतदर्शक 2 पृ. 27
42. वही पृ. 38
43. नवगीतदर्शक 1 पृ. 13
44. नवगीत अर्द्धशती पृ. 113
45. वही पृ. 112
46. डॉ. सत्येन्द शर्मा नवगीत संवेदना ओ शिल्प पृ. 313-314
47. डॉ. विष्णुविराट धूनवन से लौटते हुए पृ.19
48. वही पृ. 21
49. डॉ. विष्णुविराट नागर्थ सितम्बर पृ. 24
50. नवगीत अदराती पृ. 136
51. नये पुराने सितम्बर 1998 पृ. 151
52. नवगीत अर्द्धशती पृ. 48
53. नवगीत अर्द्धशती पृ.60-61
54. नये पुराने सितम्बर 1998 पृ.175
55. डॉ. विष्णुविराट भव्यभारती 1996 97 पृ. 7
56. वही पृ.7
57. रवीन्दभमट नये पुराने सितम्बर 1998 पृ. 180
58. यशलवीय वही पृ. 113
59. भव्य भारती नवगीत शिखर (1999) पृ. 39
60. वही पृ. 39
61. नये पुराने गीत अंक 5 (1999) पृ.108
62. भव्य पुराने गीत अंक 4 (1999) पृ. 27
63. नये पुराने गीत अंक 4 (1999) पृ. 113
64. राजेन्द्र गौतम नवगीत दशक 3 पृ. 31
65. मधुमती, मई 1999 पृ. 52
66. नये पुराने सितम्बर 1998 पृ.131
67. डॉ. इशाक अश्क नवगीत अर्द्धशती पृ. 55
68. ओम निश्चल नवगीत अर्द्धशती पृ. 66
69. राजकुमारी रश्मि नवगीत अर्द्धशती पृ. 200
70. अदभान्त नवगीत अर्द्धशती पृ. 57
71. डॉ. उमाशंकर तिवारी नवगीत अर्द्धशती पृ. 63
72. श्रीकृष्ण तिवारी नवगीतदशक 2 पृ. 108
73. अमरनाथ श्रीवास्तव वही पृ. 137
74. भव्य भारती नवगीत शिखर (1999) पृ. 39
75. नवगीतदशक 2 पृ. 125
76. डॉ. विष्णुविराट धूमुवन से लौटते हुए पृ. 13